भोपाल गैस कांड

बेदर्दी और बेरुखी के तीस साल

एन. डी. जयप्रकाश और डॉ. सी. सत्यमाला

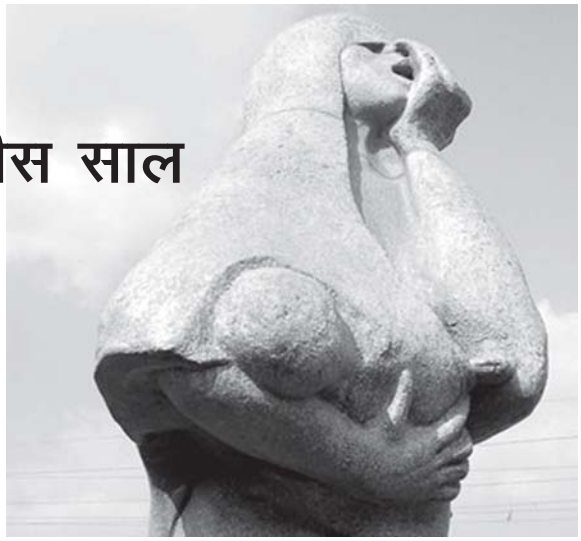

सारी उम्मीदों के विपरीत भारत सरकार और मध्य प्रदेश सरकार को इस बात पर कोई पछतावा नहीं है कि वे भोपाल गैस पीड़ितों की सेहत का आकलन करने, निगरानी करने और समुचित उपचारात्मक कदम उठाने में पूरी तरह नाकाम रही हैं। इस संदर्भ में भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) की घोर उदासीनता भी उतनी ही चौंकाने वाली है। हादसे के तीस साल बाद भी लोग एक घटिया सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा के भरोसे ही हैं।

तीस साल पहले, 2-3 दिसंबर 1984 की रात को भोपाल के लोग दुनिया के सबसे बदतरीन औद्योगिक हादसे के शिकार हुए थे। उस रात शहर के करीब 9 लाख लोगों में से दो-तिहाई लोग अत्यंत ज़हरीली गैस के संपर्क में आए थे। इस हादसे का कारण था यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड (यूसीआईएल) के कीटनाशक कारखाने से गैसों का रिसाव। यूसीआईएल उस समय यूएस की बहुराष्ट्रीय कंपनी यूनियन कार्बाइड कॉर्पोरेशन (यूसीसी) की एक शाखा थी और अब यह डॉउ केमिकल कंपनी के स्वामित्व में है। रिसाव का कारण यह था कि ज़मीन में गड़े जिस टैंक में लगभग 40 टन मिथाइल आइसोसायनेट (एमआईसी) नामक अत्यंत वाष्पशील व ज़हरीला रसायन तरल रूप में भरा था, उसमें ऐसी अभिक्रिया शुरू हो गई जिसमें बहुत गर्मी पैदा होती है।

शहर के जीव-जंतु और पेड़-पौधे भी काफी प्रभावित हुए थे। हादसे का मूल कारण यह था कि इस कारखाने में सुरक्षा प्रणाली बहुत कम थी और घटिया किस्म की थी। अर्थात यूसीसी ने इस मामले में सुरक्षा के दोहरे मापदंड अपनाए थे। उसी यूसीसी ने वेस्ट वर्जीनिया (यूएसए) स्थित अपने कारखाने में कहीं बेहतर सुरक्षा प्रणाली लगाई हुई थी।

दबाना-छिपाना

यूसीसी और यूसीआईएल ने हादसे की गंभीरता और परिणामों को कम करके बताने की हर संभव कोशिश की थी। यूसीसी/यूसीआईएल ने न तो अधिकारियों को इस बात की सूचना दी थी और न ही स्थानीय आबादी को कोई पूर्व-चेतावनी दी थी कि यदि कारखाने से दुर्घटनावश एमआईसी व अन्य ज़हरीले रसायन रिस जाएं तो क्या करना है। और तो और, उन्होंने स्थानीय डॉक्टर्स को एमआईसी के खतरनाक प्रभावों के बारे में गुमराह करने की कोशिश की। 1985 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के मुताबिकः

“जब हादसे के शिकार लोग हमीदिया अस्पताल में इकट्ठे होने लगे, तो कंपनी के मेडिकल ऑफिसर एल.डी. लोया ने हैरान-परेशान डॉक्टरों को बतायाः यह गैस ज़हरीली नहीं है। मरीज़ों से बस इतना कहिए कि अपनी आंखों पर गीला तौलिया रख लें।”

वास्तव में, “स्थानीय कार्बाइड अधिकारी तो अड़े

रहे कि एमआईसी सिर्फ एक इरिटेंट है (जलन पैदा करती है), जानलेवा नहीं है।" ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानीय चिकित्सा बिरादरी के कुछ सदस्य और स्थानीय प्रशासन भी कार्बाइड अधिकारियों की हां में हां मिलाने में लगे थे। बाद में जब पोस्ट मॉर्टम रिपोर्ट्स से यह उजागर होने लगा कि कई मौतें संभवतः सायनाइड विष के कारण हुई हैं, तो सच्चाई को छिपाने का घृणित चक्र और तेज़ी से घूमने लगा। कारण यह था कि सायनाइड जाना-माना जानलेवा रसायन है, इसलिए कार्बाइड अधिकारी नहीं चाहते थे कि लोग एमआईसी को सायनाइड से जोड़कर देखने लगें। इस तरह से गलत जानकारी फैलाने के सोचे-समझे प्रयासों के परिणाम घातक थे। उदाहरण के लिए, इसकी वजह से लोगों को सोडियम थायो सल्फेट नहीं दिया गया, जो सायनाइड विषाक्तता का एकमात्र प्रतिकार है जबकि यदि यह दवा समय पर मिलती तो कई जानें बचाई जा सकती थीं और स्वास्थ्य को हुए नुकसान को कम किया जा सकता था। यह सब इस तथ्य के बावजूद था कि आईसीएमआर द्वारा जनवरी 1985 में शुरू किए गए अध्ययन में स्पष्ट कहा गया था कि "भोपाल के गैस पीड़ितों की सतत तकलीफों को कम करने में सोडियम थायो सल्फेट के उपयोग का तार्किक आधार स्थापित हुआ है।"

इस तरह के निष्कर्षों के बावजूद भोपाल व अन्यत्र शक्तिशाली कार्बाइड-समर्थक लॉबी ने आसानी से सोडियम थायो सल्फेट सम्बंधी आईसीएमआर के मत को दरकिनार कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश गैस पीड़ितों को ज़रूरी चिकित्सा राहत नहीं मिल पाई। और साज़िशें यहीं खत्म नहीं हुईं। विभिन्न हलकों से आईसीएमआर पर दबाव बनाया गया, और नतीजा यह हुआ कि आईसीएमआर ने कई वर्षों तक भोपाल सम्बंधी अपने अनुसंधान के निष्कर्ष प्रकाशित नहीं किए।

कार्बाइड-समर्थक लॉबी ने उन कोशिशों में भी सेंध लगाई जो हादसे के कुल असर का आकलन करने और सारे गैस पीड़ितों की पहचान करने के लिए चल रहे थे। हुआ यह था कि इसके लिए प्रदेश सरकार के साथ मिलकर मुंबई के टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान द्वारा गैस प्रभावित इलाकों में घर-घर सर्वेक्षण किया जा रहा था। इसमें देश भर के विभिन्न समाज कार्य संस्थाओं के करीब 500 छात्र और शिक्षक शामिल थे। अलबत्ता, जनवरी-फरवरी 1985 के दरम्यान करीब 25,000 परिवारों यानी कुल प्रभावित आबादी में से एक-चौथाई (आईसीएमआर के मुताबिक) के बारे में काफी सारे आंकड़े इकट्ठे हो जाने के बाद, प्रदेश सरकार ने मनमाने ढंग से टाटा संस्थान का सर्वेक्षण बंद करने का निर्णय ले लिया। सबसे बुरी बात यह रही कि उस समय तक जितने भी आंकड़े इकट्ठे किए गए थे, वे सब प्रदेश सरकार ने जब्त कर लिए और टाटा संस्थान या किसी अन्य एजेंसी के साथ साझा नहीं किए जो इन आंकड़ों का उचित विश्लेषण कर पाती। नतीजतन, हादसे के तुरंत बाद उसके वास्तविक प्रभाव का समग्र आकलन करने का अवसर जाता रहा और राज्य सरकार ने इस मामले में अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ लिया। यह एक-एक व्यक्ति की ज़िम्मेदारी हो गई कि वह सिद्ध करे कि वह (या उसके परिजन) गैस का शिकार हुआ/हुई थी। और तो और, हरेक व्यक्ति को मुआवज़े के व्यक्तिगत दावे के साथ इस बात का प्रमाण भी प्रस्तुत करना पड़ा कि उसे किस ढंग का नुकसान हुआ है (जिसका आकलन प्रायः हरेक व्यक्ति के बस की बात नहीं होती)। व्यक्तिगत मुआवज़े के दावे प्रस्तुत करने की यह श्रमसाध्य प्रक्रिया भी भोपाल गैस रिसाव हादसा (दावों का पंजीयन व निपटारा) योजना लागू होने के बाद सितंबर 1985 में जाकर शुरू हुई। कुल मिलाकर, एक ओर तो हादसे के पैमाने और तकलीफ को कम करके

दिखाने की कोशिश चल रही थी, वहीं दूसरी ओर, न तो गैस-पीड़ितों को सही चिकित्सा मुहैया करवाने का कोई प्रयास हुआ और न ही यह सुनिश्चित किया गया कि उन्हें उनकी क्षति और कष्ट के अनुरूप समुचित मुआवज़ा मिले।

आगे चलकर, दावा निदेशालय ने 1987 से 1990 के दरम्यान यानी हादसे के 3-6 साल बीत जाने के बाद तथाकथित मेडिकल दस्तावेज़ीकरण की कवायद की। इसका उद्देश्य यह बताया गया कि इससे प्रत्येक दावेदार की क्षति का अनुमान लगाने में मदद मिलेगी। दस्तावेज़ीकरण के इस ढोंग में कुल करीब 6 लाख दावेदारों में से मात्र 3,61,966 को शामिल किया गया था। सामाजिक कार्यकर्ताओं के एक दल ने भोपाल में अक्टूबर 1989 में एक मेडिकल सर्वेक्षण करने के बाद मेडिकल दस्तावेज़ीकरण की इस कवायद की एक विस्तृत समीक्षा तैयार की। 'अगेन्स्ट ऑल ऑड्स' नामक इस रिपोर्ट के निष्कर्ष निम्नानुसार थेः

"दावेदारों की अपर्याप्त जांच (शारीरिक व अन्य जांचों के ज़रिए) करके और त्रुटिपूर्ण औज़ारों का उपयोग करके क्षतियों का आकलन तथा वर्गीकरण करके दावा निदेशालय ने 90 प्रतिशत से ज़्यादा पीड़ितों को 'कोई क्षति नहीं' या 'अस्थायी क्षति' का नाम दे दिया।"

न्याय के लिए संघर्ष

गैस पीड़ितों को ज़रूरी चिकित्सा मुहैया करवाने में राज्य सरकार की नाकामी के चलते मजबूर होकर भोपाल ज़हरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा और जन स्वास्थ्य केंद्र (गैस पीड़ितों के मुद्दे उठाने के लिए भोपाल में गठित स्वैच्छिक संगठन) को न्याय के लिए सुप्रीम कोर्ट का दरवाज़ा खटखटाना पड़ा। डॉ. निशीत वोरा तथा दो गैस पीड़ितों की ओर से 1 अगस्त 1985 को दायर याचिका क्रमांक 11708/1985 के माध्यम से सुप्रीम कोर्ट का ध्यान गैस पीड़ितों की समस्याओं की ओर आकर्षित किया गया, जो उचित स्वास्थ्य देखभाल के अभाव तथा स्वास्थ्य सेवाओं की घटिया हालत की वजह से पैदा हो रही थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस याचिका के प्रत्युत्तर में ही भारत सरकार ने 8 अगस्त 1985 को 'जीवन तंत्रों पर भोपाल गैस रिसाव के प्रभावों के निरंतर अध्ययन के लिए वैज्ञानिक आयोग' का गठन किया था। डॉ. सी.आर. कृष्णमूर्ति (पूर्व निदेशक, भारतीय विष विज्ञान अनुसंधान संस्थान) इसके अध्यक्ष नियुक्त किए गए थे।

उपरोक्त याचिका क्र. 11708/1985 के संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट ने 4 नवंबर 1985 के अपने आदेश में कहा था,

"यह वांछनीय है कि एक स्वतंत्र मशीनरी गठित की जाए जो...गैस प्रभावित पीड़ितों का एक एपिडीमियोलॉजिकल (रोग प्रसार वैज्ञानिक) अध्ययन करेगी और घर-घर सर्वेक्षण भी करेगी जो गैस पीड़ितों और उनके परिवारों को दिए जाने वाले मुआवज़े की राशि निर्धारित करने के लिए भी ज़रूरी है। यह गैस प्रभावित परिवारों को उचित चिकित्सा सुविधाएं मुहैया करवाने की दृष्टि से भी अनिवार्य है।"

इसके अलावा, सुप्रीम कोर्ट ने उसी दिन सात विशेषज्ञों की एक समिति का गठन किया। इस समिति को भोपाल गैस पीड़ितों के लिए चिकित्सा राहत व अन्य मुद्दों पर सिफारिशें देने को कहा गया। इस समिति में 3 प्रतिनिधि आईसीएमआर के, 2 प्रतिनिधि सरकार के और 2 प्रतिनिधि गैस पीड़ितों के थे। गैसे पीड़ितों के प्रतिनिधियों के रूप में डॉ. अनिल सद्गोपाल तथा डॉ. सुजीत दास को शामिल किया गया था। समिति के विचारार्थ विषयों में निम्नलिखित बिंदु शामिल किए गए थेः (1) सोडियम थायो सल्फेट उपचार की मदद से गैस पीड़ितों को विषमुक्त करना, (2) गैस पीड़ितों का उचित रोग प्रसार वैज्ञानिक सर्वेक्षण और घर-घर सर्वेक्षण करना ताकि दस्तावेज़ीकरण किया जा सके और पीड़ितों को मुआवज़ा की राशि निर्धारित की जा सके, (3) चिकित्सा राहत, निगरानी वगैरह की व्यवस्था करना। चूंकि समिति में कोई एकराय न बन सकी इसलिए अल्पमत सदस्यों, डॉ. सद्गोपाल और डॉ. दास, ने 1987-88 के दौरान कई रिपोर्ट्स प्रस्तुत कीं और सुप्रीम कोर्ट से निर्देशों का आग्रह किया। बदकिस्मती से उस समय कोर्ट ने '*फायनल रिपोर्ट ऑन मेडिकल रिलीफ एंड रिहैबिलिटेशन ऑफ भोपाल गैस विक्टिम्स*' में प्रस्तुत की गई सुविचारित सिफारिशों को अनदेखा कर दिया। यह रिपोर्ट कोर्ट के समक्ष 30 अगस्त 1988 को प्रस्तुत की गई थी।

तत्पश्चात, 14/15 फरवरी 1989 के अन्यायपूर्ण समझौते

के बाद गैस पीड़ितों के संगठनों (भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन, भोपाल ग्रुप फॉर इंफर्मेशन एंड एक्शन, तथा भोपाल गैस पीड़ित संघर्ष सहयोग समिति) ने आईसीएमआर पर दबाव बनाया कि वह अपने शोध अध्ययनों के नतीजों को सार्वजनिक करे। जब तक आईसीएमआर से कुछ जानकारी बाहर आने लगी, तब तक वह भोपाल हादसे से सम्बंधित सारे अनुसंधान को समेटने की प्रक्रिया शुरू कर चुका था। अंततः 1994 में उसने सारे अनुसंधान बंद कर दिए जबकि सुप्रीम कोर्ट ने 3 अक्टूबर 1991 के अपने फैसले में इन्हें जारी रखने के स्पष्ट निर्देश दिए थे। समझौता आदेश के विरुद्ध याचिकाओं के निपटारे सम्बंधी आदेश में सुप्रीम कोर्ट ने निर्देश दिए थेः

"हमारा मत है कि कम से कम आठ साल की अवधि तक भोपाल में एमआईसी की विषाक्तता से पीड़ित आबादी के लिए चिकित्सा निगरानी की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिए समय-समय पर उनकी जांच गैस-सम्बंधी तकलीफों के लिए की जानी चाहिए।"

इसके बावजूद, पिछले तमाम वर्षों में आईसीएमआर अथवा राज्य सरकार ने सारे गैस पीड़ितों की व्यवस्थित पहचान करने, उन्हें उचित चिकित्सा उपलब्ध कराने और उनकी सेहत की निगरानी करने की कोई कोशिश नहीं की है। यह सब इसके बावजूद हुआ कि भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन, भोपाल ग्रुप फॉर इंफर्मेशन एंड एक्शन तथा भोपाल गैस पीड़ित संघर्ष सहयोग समिति ने आईसीएमआर को यह समझाने के काफी प्रयास किए कि वह गैस पीड़ितों के हितों के साथ दगाबाज़ी न करे। इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ कंसर्न फॉर पब्लिक हेल्थ (कनाडा) और पर्मानेंट पीपुल्स ट्रायबूनल (बर्ट्रैण्ड रसेल द्वारा स्थापित, इटली में स्थित) की मदद से ये संगठन 1993 में 15 सदस्यीय इंटरनेशनल मेडिकल कमीशन ऑन भोपाल का गठन करवाने में सफल रहे। इस आयोग में 12 देशों के विशेषज्ञ शामिल थे। डॉ. रोज़ेली बर्टेल और डॉ. गियानी टोग्नोनी इसके सह-अध्यक्ष थे। आयोग का उद्देश्य गैस पीड़ितों की सेहत की वर्तमान स्थिति का आकलन करके ज़रूर सिफारिशें देना था। इंटरनेशनल मेडिकल कमीशन ऑन भोपाल ने भोपाल में जनवरी 1994 में बैठक की और बाद में आईसीएमआर के प्रतिनिधियों से भी बातचीत की। कमीशन ने कई उल्लेखनीय सिफारिशें प्रस्तुत की जिन्हें भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन, भोपाल ग्रुप फॉर इंफर्मेशन एंड एक्शन तथा भोपाल गैस पीड़ित संघर्ष सहयोग समिति द्वारा सुप्रीम कोर्ट के ध्यान में भी लाया गया था। सुप्रीम कोर्ट उस समय एक अन्य स्वास्थ्य सम्बंधी मुद्दे पर विचार कर रहा था। नतीजा यह हुआ कि गैस पीड़ितों के लिए स्वास्थ्य इंफ्रास्ट्रक्चर में विस्तार हुआ - भोपाल मेमोरियल अस्पताल व अनुसंधान केंद्र के रूप में। इस केंद्र ने सन 2000 में काम करना शुरू कर दिया। अलबत्ता, कमीशन की सिफारिशों को भी सुप्रीम कोर्ट ने 1998 में कमोबेश अनदेखा ही किया।

गैस पीड़ितों के प्रति आईसीएमआर की उदासीनता से त्रस्त होकर भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन, भोपाल ग्रुप फॉर इंफर्मेशन एंड एक्शन और भोपाल गैस पीड़ित संघर्ष सहयोग समिति ने 14 जनवरी 1998 को सुप्रीम कोर्ट में एक याचिका दायर की (याचिका क्र. 50/1998) जिसमें कोर्ट से अनुरोध किया गया था कि वह आईसीएमआर को भोपाल हादसे से सम्बंधित चिकित्सा अनुसंधान फिर से शुरू करने का निर्देश दे। याचिका में यह भी निवेदन किया गया था कि आईसीएमआर तथा राज्य सरकार के भोपाल गैस त्रासदी राहत व पुनर्वास विभाग को निर्देश दिया जाए कि वे गैस पीड़ितों के लिए स्वास्थ्य इंफ्रास्ट्रक्चर में विस्तार करें और प्रत्येक गैस पीड़ित को एक स्वास्थ्य पुस्तिका जारी करे जिसमें उसका पूरा मेडिकल रिकॉर्ड हो। इसके परिणामस्वरूप सुप्रीम कोर्ट ने 25 जुलाई 2001 को निम्नलिखित निर्देश जारी किएः

"जिन गैस पीड़ितों को आजीवन मुफ्त चिकित्सा सुविधा की पात्रता है, उन्हें स्थायी कार्ड जारी किए जाएंगे, जबकि अन्य मामलों में, जहां दावा प्रकरण प्रक्रियाधीन है, अस्थायी कार्ड प्रदान किए जाएंगे जब तक कि उनकी पात्रता सम्बंधी स्थिति का अंतिम फैसला नहीं हो जाता।"

17 जुलाई 2007 और 15 नवंबर 2007 को सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस संदर्भ में दो और आदेश जारी होने के

बावजूद आईसीएमआर और भोपाल गैस त्रासदी राहत व पुनर्वास विभाग निडर होकर कोर्ट के आदेशों की अवहेलना कर रहे हैं। अलबत्ता, पीड़ितों के संगठनों ने हथियार नहीं डाले और दबाव बनाना जारी रखा क्योंकि भारत सरकार द्वारा भोपाल हादसे से सम्बंधित मामलों की निगरानी करने हेतु गठित मंत्री समूह ने 17 अप्रैल 2008 की अपनी बैठक में आईसीएमआर द्वारा भोपाल हादसे से सम्बंधित चिकित्सा अनुसंधान जारी रखने के संदर्भ में सकारात्मक रुख अपनाया था। इसके बाद 3 जून 2008 को हुई मंत्री समूह की दूसरी बैठक ने तो केंद्रीय स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय को इस मामले में विशिष्ट निर्देश जारी किए। इस तरह के निर्देशों के बावजूद, आईसीएमआर ने खास कुछ किया नहीं। अंततः जब 24 जून 2010 के दिन केंद्रीय मंत्री मंडल ने इस संदर्भ में एक प्रस्ताव पारित कर दिया तब जाकर आईसीएमआर ने भोपाल में राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान (एनआईआरईएच) की स्थापना के लिए कदम उठाए हैं। अंततः यह संस्थान 11 अक्टूबर 2011 के दिन अस्तित्व में आ गया।

इसी दौरान, भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन, भोपाल ग्रुप फॉर इंफर्मेशन एंड एक्शन और भोपाल गैस पीड़ित संघर्ष सहयोग समिति के आग्रह पर सुप्रीम कोर्ट ने याचिका क्र. 50/1998 के संदर्भ में 17 अगस्त 2004 के आदेश में दो और समितियों का गठन किया था - परामर्श समिति और निगरानी समिति। ये कोर्ट के कामकाज में मदद व उचित सिफारिश देने के मकसद से बनाई गई थीं। परामर्श समिति में आईसीएमआर, राज्य सरकार और पीड़ित समूहों के प्रतिनिधि थे। इसके काम में 'भोपाल गैस पीड़ितों के लिए सही उपचार क्रम की सलाह देना' शामिल था। दूसरी 5 सदस्यीय निगरानी समिति (राज्य सरकार व पीड़ित समूहों के प्रतिनिधि) के काम में गैस पीड़ितों को दी जा रही स्वास्थ्य सेवाओं और भोपाल गैस त्रासदी राहत व पुनर्वास विभाग तथा भोपाल मेमोरियल अस्पताल व अनुसंधान केंद्र द्वारा संचालित क्लीनिक्स की निगरानी करना तथा सुधार के सुझाव देना था।

चंद निष्ठावान डॉक्टरों और शोधकर्ताओं के काम को छोड़ दें, तो एक संस्था के रूप में आईसीएमआर ने अपने काम को ठीक से नहीं निभाया है। जैसा कि पहले कहा गया, आईसीएमआर ने सारे गैस पीड़ितों की पहचान और उनको हुई क्षति के आकलन के लिए कुछ नहीं किया। आज तक उसके पास गैस पीड़ितों के लिए कोई उपयुक्त चिकित्सा प्रोटोकॉल तक नहीं है।

यह दावा भी निराधार है कि आईसीएमआर की रिपोर्ट्स से मुआवज़े की कुल राशि के आकलन में या व्यक्तियों को दी जाने वाली मुआवज़ा राशि के आकलन में मदद मिली थी। दावा अदालतें कल्याण आयुक्त के अधीन काम करती रही हैं और कल्याण आयुक्त ने स्वयं स्पष्ट किया है कि आईसीएमआर रिपोर्ट्स कभी दावा अदालतों के समक्ष प्रस्तुत नहीं की गईं। यह बात उनके दिनांक 31 जनवरी 2009 के आदेश से ज़ाहिर है:

"आईसीएमआर रिपोर्ट्स ट्रायबूनल के समक्ष पेश नहीं की गईं और न ही ऐसी किसी रिपोर्ट को सबूत के रूप में पेश किया गया है। यदि भविष्य में ऐसी कोई रिपोर्ट प्रकाशित होती है या सार्वजनिक की जाती है, तो यह भारतीय संघ पर है कि वह इन पर विचार करे और उपयुक्त कार्रवाई करें।"

लिहाज़ा इसमें अचरज की कोई बात नहीं है कि आईसीएमआर ने भोपाल गैस रिसाव के जीवन तंत्रों पर प्रभाव के सतत अध्ययन के लिए गठित वैज्ञानिक आयोग की 900 से अधिक पृष्ठों की रिपोर्ट का कोई ज़िक्र तक नहीं किया है। '*दी भोपाल गैस डिसास्टरः इफेक्ट्स ऑन लाइफ सिस्टम्स*' नामक यह रिपोर्ट जुलाई 1987 में भारत सरकार को प्रस्तुत की गई थी। इस रिपोर्ट में वैज्ञानिक आयोग ने आईसीएमआर के कामकाज पर, खास तौर से रोग-प्रसार वैज्ञानिक अध्ययन की डिज़ाइन के संदर्भ में, प्रतिकूल टिप्पणियां की हैं। आयोग की रिपोर्ट के कार्यकारी सारांश में कहा गया है:

"(क) भोपाल में शुरू किए गए रोग-प्रसार वैज्ञानिक कार्यक्रम की प्रगति धीमी रही है और उसकी डिज़ाइन तथा क्रियान्वयन के इंफ्रास्ट्रक्चर में कई खामियां हैं। काम के मूल्यांकन तथा बीच रास्ते में सुधार के लिए पीयर रिव्यू

(समकक्ष लोगों द्वारा समीक्षा) व्यवस्था अनुपस्थित है। जीनो-टॉक्सिक प्रभावों (आनुवंशिक प्रभावों) की निगरानी बच्चों सहित एक बड़े प्रादर्श में करने की बात को अभी भी रोग-प्रसार वैज्ञानिक अध्ययन में शामिल नहीं किया गया है।

"(ख) आम तौर पर, अब तक रोग प्रसार वैज्ञानिक प्रोजेक्ट के परिणाम उन्हें सौंपे गए काम की तुलना में बहुत कम हैं। इसका कारण शायद संसाधनों - प्रशिक्षित स्टाफ और भौतिक सुविधाओं दोनों - का अभाव है। ऐसा अवसर शायद फिर नहीं आएगा जब एक ऐसी आबादी का लॉन्गीट्यूडिनल अध्ययन किया जा सके जिस पर एक बारगी रासायनिक संपर्क का असर पड़ा हो। इसका मतलब है कि यह अवसर गंवा दिया गया है।

"(ग) भोपाल में गठित सांगठनिक ढांचे में इस प्रमुख इकाई (रोग प्रसार वैज्ञानिक सेवा) की स्थिति अपर्याप्त है। इस संदर्भ में गौरतलब है कि भारतीय रोग प्रसार वैज्ञानिकों ने बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में संक्रामक रोगों के नियंत्रण में प्रमुख भूमिका निभाई थी...आश्चर्य होता है कि वह समृद्ध परंपरा कहां गई और क्या उसे पुनर्जीवित किया जा सकता है।"

वैज्ञानिक आयोग की अक्लमंद सिफारिशों को स्वीकार करने की बजाय आईसीएमआर ने इन्हें पूरी तरह अनदेखा करना पसंद किया। वैज्ञानिक आयोग की उपरोक्त निहायत संवेदनशील टिप्पणियों के मद्देनज़र आईसीएमआर द्वारा अपना भोपाल केंद्र बंद करने और भोपाल हादसे से सम्बंधित सारा अनुसंधान बंद करने का निर्णय बगैर सोचे-विचार लिया गया निर्णय लगता है। आईसीएमआर का यह रुख भी शोचनीय था कि उसने यह सुनिश्चित करने में कोई भूमिका नहीं निभाई कि सरकार एमआईसी के संपर्क में आई पूरी आबादी की चिकित्सकीय निगरानी का महत्वपूर्ण कार्य करे। दरअसल, आईसीएमआर तो यह दिखाने की कोशिश कर रही है कि उसे वैज्ञानिक आयोग की रिपोर्ट के बारे में कुछ पता ही नहीं था, जबकि यह रिपोर्ट 1987 में आ चुकी थी।

यह भी आश्चर्यजनक है कि आईसीएमआर काफी लंबे समय तक सुप्रीम कोर्ट द्वारा याचिका क्र. 11708/1985 के संदर्भ में दिनांक 4 नवंबर 1985 को गठित सात-सदस्यीय समिति में हुए विचार-विमर्श की बात करने से भी कतराता रहा। इस समिति का गठन भोपाल गैस पीड़ितों की चिकित्सा राहत व सम्बंधित मुद्दों पर सिफारिशें देने के लिए किया गया था।

पूरे बीस साल बाद जाकर आईसीएमआर ने अंततः स्वीकार किया कि '*भोपाल गैस पीड़ितों के लिए सोडियम थायोसल्फेट उपचार पर अंतरिम रिपोर्ट*' के निष्कर्ष सही थे। यह रिपोर्ट सुप्रीम कोर्ट समिति के अल्पमत सदस्यों ने सुप्रीम कोर्ट के समक्ष 11 मई 1988 को प्रस्तुत की थी और उस पर कभी कोई कार्रवाई नहीं की गई थी। याचिका क्र. 50/1998 के संदर्भ में 27 नवंबर 2007 को प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट '*टेक्निकल रिपोर्ट ऑन पॉपुलेशन बेस्ड लॉन्ग टर्म एपिडीमियोलॉजिकल स्टडीज़* (1985-1994)' में आईसीएमआर ने आखिरकार सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया कि

"सोडियम थायो सल्फेट का उपयोग करते हुए एक डबल ब्लाइंड प्लेसिबो नियंत्रित अध्ययन से पता चला है कि सोडियम थायो सल्फेट देने से लाक्षणिक सुधार होता है और पेशाब में सायनाइड का उत्सर्जन बढ़ता है।"

आज तीस साल बाद भी यह नहीं बताया जा रहा है कि बड़ी संख्या में गैस पीड़ितों को सोडियम थायोसल्फेट क्यों नहीं दिया गया था, जबकि यह बहुत ज़रूरी था।

जहां तक अल्पमत सदस्यों द्वारा 30 अगस्त 1988 को सुप्रीम कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत '*फायनल रिपोर्ट ऑन रिलीफ एंड रिहेबिलिटेशन ऑफ भोपाल गैस विक्टिम्स*' का सवाल है तो उसमें चिकित्सा राहत व पुनर्वास की खामियों पर काफी रोशनी डाली गई थी। खास तौर से *फायनल रिपोर्ट* ने निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान आकर्षित किया थाः

(क) गैस रिसाव की वजह से हुई मौतों की संख्या का अनुमान लगाने की ज़्यादा विश्वसनीय विधि विकसित करने में असफलता

(ख) भोपाल की गैस-प्राभावित आबादी के एक भलीभांति डिज़ाइन किए गए रोग-प्रसार वैज्ञानिक अध्ययन की ज़रूरत

(ग) चिकित्सा दस्तावेज़ीकरण के काम को वैज्ञानिक ढंग से पुनर्गठित करना

(घ) उपचार प्रोटोकॉल के पुनर्गठन की ज़रूरत

(च) चिकित्सा निरीक्षण/निगरानी का महत्व

(छ) चिकित्सा अनुसंधान के पुनरुन्मुखीकरण की ज़रूरत

तथ्य यह है कि एक संस्था के रूप में आईसीएमआर ने उपरोक्त पहलुओं पर पर्याप्त ध्यान देने से परहेज़ अपनी अक्षमता के चलते नहीं बल्कि इसलिए किया था क्योंकि उसने राजनैतिक दबाव के आगे घुटने टेक दिए थे। कारण जो भी रहे हों, मगर आईसीएमआर को इन मुद्दों को संबोधित करने में असफल रहने की सफाई तो देनी ही होगी क्योंकि वह इस काम के लिए देश की सबसे सक्षम संस्था थी।

सरकार की उदासीनता

हादसे के तीस साल बाद भी 10 प्रतिशत से कम गैस पीड़ितों को ही स्वास्थ्य पुस्तिकाएं जारी की गई हैं। इस पुस्तिका में विभिन्न जांचों, निदान और उपचार की जानकारी रिकॉर्ड की जानी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के अलावा निगरानी समिति ने भी राज्य सरकार को निर्देश दिए हैं कि गैस पीड़ितों को स्वास्थ्य पुस्तिका दी जाए मगर राज्य सरकार आज भी इन निर्देशों की लगातार अवहेलना कर रही है। यह राज्य सरकार की ओर से किसी प्रशासनिक ढिलाई या अकार्यक्षमता की वजह से नहीं है बल्कि यह एक सोची-समझी रणनीति है ताकि चिकित्सकीय आंकड़े इकट्ठे करने का कोई भी प्रयास असफल हो जाए जो गैस पीड़ितों की हालत की गंभीरता को उजागर कर सके।

लिहाज़ा, यह आईसीएमआर द्वारा स्थापित राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान केंद्र का काम होना चाहिए कि वह अविलंब एक अभियान शुरू करके यह सुनिश्चित करे कि इलाज के लिए आने वाले हरेक गैस पीड़ित या उसकी संतानों को स्वास्थ्य पुस्तिका दी जाए। प्रत्येक गैस पीड़ित/संतान की स्वास्थ्य पुस्तिका को समय-समय पर अपडेट किया जाना चाहिए और उसमें उसकी केस हिस्ट्री की जानकारी अंकित की जानी चाहिए, जिसमें रोग की पहचान, जांच व उपचार की जानकारी शामिल हो। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि सारे गैस-सम्बंधित अस्पतालों व क्लीनिक्स में बाह्य रोगियों और भर्ती मरीज़ों के मेडिकल रिकॉर्ड्स का कंप्यूटरीकरण व नेटवर्किंग किया जाए। पूरी जानकारी को इस तरह व्यवस्थित व वर्गीकृत किया जाना चाहिए जिससे विश्लेषण की प्रक्रिया में मदद मिले और उपयुक्त निष्कर्ष निकाले जा सकें। केंद्र को गैस पीड़ितों की तकलीफों की प्रत्येक श्रेणी के लिए उपचार का प्रोटोकॉल बनाना चाहिए, जैसे (क) सांस सम्बंधी रोग, (ख) आंख सम्बंधी रोग, (ग) पेट व आंतों के रोग, (घ) तंत्रिका तंत्र सम्बंधी रोग, (च) गुर्दों की नाकामी से सम्बंधित रोग, (छ) मूत्र तंत्र सम्बंधी रोग, (ज) स्त्री रोग (झ) मानसिक तकलीफें, वगैरह। केंद्र को भोपाल की समूची गैस-प्रभावित आबादी की चिकित्सकीय निगरानी की एक प्रक्रिया शुरू करनी चाहिए और इसे जल्दी से जल्दी पूरा कर लेना चाहिए। इस प्रक्रिया में सिर्फ उन 5,73,000 से ज़्यादा गैस पीड़ितों को शामिल नहीं किया जाएगा जिन्हें मुआवज़ा मिल चुका है, बल्कि उनकी संतानों को भी शामिल किया जाएगा जो संभावित जेनेटिक प्रभावों के चलते शायद गैस पीड़ित हों। केंद्र को समय-समय पर गैस पीड़ितों के हितैषी संगठनों से परामर्श करना चाहिए ताकि राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान केंद्र द्वारा अपनाई गई नीतियों, कार्यक्रमों और गतिविधियों की गुणवत्ता, प्रभाविता और यथेष्टता पर बातचीत की जा सके।

हमें ऐसा लगता है कि राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान केंद्र ने गलत प्राथमिकताओं का चयन किया है। ऐसा माना जा रहा कि जैसे केंद्र का काम स्वतंत्र इंफ्रास्ट्रक्चर और उपकरणों के बगैर आगे नहीं बढ़ सकता। दरअसल 11 अक्टूबर 2010 को अपनी स्थापना के तत्काल बाद ही केंद्र ने एक कंप्यूटरीकृत सेंट्रल रजिस्ट्री तैयार करने का काम शुरू कर देना था। यह वह काम है जिसे परामर्श समिति की पहली बैठक (16 मार्च 2005) के निर्णय के अनुसार पूर्व में गठित पुनर्वास अध्ययन केंद्र को करना था। सुप्रीम कोर्ट के दिनांक 17 सितंबर 2004 के आदेश के तहत वर्णित विचारार्थ विषयों के बिंदु 2 में कहा गया है, "भोपाल गैस पीड़ितों को दिए जाने वाले उपयुक्त उपचार के बारे में सिफारिश/सलाह देना।" परामर्श समिति की पहली बैठक 16 मार्च 2005 को हुई थी जिसमें यह सिफारिश की गई थी कि "एक सेंट्रल रजिस्ट्री बनाई जाएगी, जिसमें उन सारे व्यक्तियों के रिकॉर्ड

रखे जाएंगे जो सरकारी अस्पतालों, मेडिकल कॉलेज और सरकारी सहायता प्राप्त गैस राहत अस्पतालों तथा भोपाल मेमोरियल अस्पताल व अनुसंधान केंद्र से गैस राहत के अंतर्गत पात्र हैं। गैर सरकारी संगठनों द्वारा संचालित और निजी अस्पताल स्वेच्छा से इस रजिस्ट्री के हिस्से बनना चाहें, तो वे अपने आंकड़े उपलब्ध करा सकते हैं। सेंट्रल रजिस्ट्री के तहत संस्थाओं में जाकर रोगों के पैटर्न और अस्पताल में एमआईसी के प्रभाव से सम्बंधित भर्ती होने की दर की जानकारी प्राप्त की जाएगी। यह रजिस्ट्री पुनर्वास अध्ययन केंद्र द्वारा तैयार की जाएगी।"

हालांकि परामर्श की समिति की दूसरी बैठक (31 जनवरी 2006) में यह बताया गया था कि कंप्यूटरीकृत रजिस्ट्री के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है, मगर ऐसा लगता है कि पिछले 8 वर्षों में इस दिशा में आगे कोई प्रगति नहीं हुई है। इन हालात में राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान केंद्र के पास इस प्रक्रिया को शुरू करने का बढ़िया अवसर था मगर उसने इस मामले में कुछ नहीं किया है और न ही यह उसकी प्राथमिकता है। इसकी बजाय केंद्र की प्राथमिकता तो अपना इंफ्रास्ट्रक्चर बनाने की लगती है। और तो और, गैस पीड़ितों की ज़रूरतों को पूरा करने की कोई समयबद्ध योजना भी नज़र नहीं आती।

निष्कर्ष

इसमें कोई संदेह नहीं है कि आईसीएमआर से जुड़े कई व्यक्तियों ने प्रशंसनीय काम किया है जिससे गैस पीड़ितों को लाभ मिला है। अलबत्ता, उनका यह मूल्यवान काम एक संस्था के तौर पर आईसीएमआर की गंभीर खामियों को नहीं ढंक सकता। आईसीएमआर ने महत्वपूर्ण अवसरों पर गैस पीड़ितों के साथ छल किया है। 'भारत में जैव चिकित्सकीय अनुसंधान के नियोजन, समन्वय और उसे बढ़ावा देने वाली शीर्षस्थ संस्था" के रूप में आईसीएमआर ने कम से कम भोपाल हादसे के संदर्भ में अपने मेन्डेट को पूरा करने के लिए कुछ नहीं किया है। हम जानना चाहेंगे कि आईसीएमआर ने भोपाल गैस पीड़ितों को, मिट्टी व पानी के संदूषण से प्रभावित लोगों को "स्वास्थ्य देखभाल प्रदाय की वैकल्पिक रणनीति के विकास" के लिए क्या कदम उठाए हैं। आईसीएमआर ने "गैस प्रभावित/प्रदूषण प्रभावित आबादी की बीमारियों के बोझ को कम करने और उनकी सेहत और खुशहाली को बढ़ावा देने के लिए" क्या किया है?

14 साल के विलंब से ही सही, सुप्रीम कोर्ट ने 9 अगस्त 2012 को भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन, भोपाल ग्रुप फॉर इंफर्मेशन एंड एक्शन तथा भोपाल गैस पीड़ित संघर्ष सहयोग समिति की याचिका क्र. 50/1998 पर अपना समग्र आदेश दिया। यह याचिका गैस पीड़ितों के लिए उपयुक्त स्वास्थ्य सुविधाएं प्राप्त करने के लिए दायर की गई थी। कोर्ट ने भारत सरकार, मध्यप्रदेश सरकार और आईसीएमआर को कई कार्य करने के स्पष्ट निर्देश दिए। कोर्ट के कुछ महत्वपूर्ण निर्देश यहां प्रस्तुत हैं:

- आईसीएमआर और राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान केंद्र को निर्देश दिया गया है कि वे "सुनिश्चित करें कि अनुसंधान कार्य सटीक ढंग से व गति से चले तथा यह भी सुनिश्चित करें कि गैस पीड़ितों को पूरा लाभ मिले।"
- निगरानी समिति को निर्देश दिया गया था कि वह चिकित्सा निगरानी की प्रक्रिया को कार्यरूप दे; मेडिकल रिकॉर्ड के कंप्यूटरीकरण के तौर-तरीके विकसित करे; और यह सुनिश्चित करे कि हरेक गैस पीड़ित को स्वास्थ्य पुस्तिका व स्मार्ट कार्ड दिए जाएं।
- निगरानी समिति को भोपाल मेमोरियल अस्पताल व अनुसंधान केंद्र तथा भोपाल गैस त्रासदी राहत व पुनर्वास विभाग के अन्य अस्पतालों में गैस पीड़ितों की समस्याओं के संदर्भ में निगरानी के पूर्ण अधिकार दिए गए हैं।
- निगरानी समिति को निर्देश है कि वह सलाहकार समिति व राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान केंद्र तथा भोपाल मेमोरियल अस्पताल व अनुसंधान केंद्र के विशेषज्ञ डॉक्टरों के साथ मिलकर बीमारी की विभिन्न श्रेणियों के इलाज के लिए मानक प्रोटोकॉल तैयार करे और मरीज़ों व क्षतियों का वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकरण करे।
- राज्य सरकार और निगरानी समिति को निर्देश दिया गया है कि वे भोपाल मेमोरियल अस्पताल और भोपाल गैस त्रासदी राहत व पुनर्वास विभाग की विभिन्न चिकित्सा

इकाइयों के लिए एक सामान्य रेफरल व्यवस्था की पद्धति विकसित करे ताकि गैस पीड़ितों को सही जगह रेफर किया जा सके जहां उनकी क्षति के प्रकार व स्तर को देखते हुए उपयुक्त निदान व उपचार हो सके।

- सम्बंधित अधिकारियों को निर्देश दिया गया है कि वे डॉक्टरों और सहायक स्टाफ के खाली पदों को भरने के लिए उपयुक्त कदम उठाएं और ऐसा इंफ्रास्ट्रक्चर व सुविधाएं मुहैया कराएं कि डॉक्टर सुविधाओं के अभाव के चलते इस्तीफा देने को मजबूर न हों।
- भारत सरकार व मध्यप्रदेश सरकार को निर्देश दिया गया है कि वे भोपाल के यूनियन कार्बाइड कारखाने और उसके आसपास पड़े ज़हरीले कचरे को ठिकाने लगाने के कदम तत्काल उठाएं। यह काम निगरानी समिति, परामर्श समिति और राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान की सिफारिशों के आधार पर अगले 6 महीनों में पूरा कर लिया जाए।

राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान को सही दिशा में ले जाकर आईसीएमआर एक ऐसा अवसर निर्मित कर सकता है जो उसे उन पापों से मुक्त कर देगा जिनकी वजह से गैस पीड़ितों के हितों का नुकसान हुआ है। यह उम्मीद की जाती है कि आईसीएमआर अतीत की अपनी गलतियों को नहीं दोहराएगा और सुप्रीम कोर्ट के 9.8.2012 के आदेशों की पूर्ति हेतु सारे ज़रूरी कदम उठाएगा।

अलबत्ता, हकीकत यह है कि सुप्रीम कोर्ट के 9 अगस्त 2012 के आदेश के दो साल बाद भी आईसीएमआर और राज्य सरकार ने इन निर्देशों के क्रियान्वयन की दिशा में खास कुछ नहीं किया है। इस संदर्भ में निगरानी समिति, जिसके अध्यक्ष न्यायमूर्ति वी. के. अग्रवाल (म.प्र. हाई कोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश) हैं, ने अपनी 2014 की दूसरी व तीसरी तिमाही रिपोर्ट (म.प्र. हाई कोर्ट को 12 जून व 13 अक्टूबर 2014 को प्रस्तुत) में सुप्रीम कोर्ट के आदेशों पर अमल न किए जाने पर निम्नलिखित शब्दों में रोष व्यक्त किया है:

"(क) जहां तक कंप्यूटरीकरण का सवाल है...एन.आई.सी. और गैस अस्पतालों ने रिपोर्ट किया है कि कंप्यूटरीकरण का काम पूरा हो चुका है। मगर निगरानी समिति का मत है कि यह काम संतोषप्रद नहीं है और मरीज़-केंद्रित नहीं है क्योंकि यह डॉक्टर के पास इलाज के लिए आए मरीज़ों की केस हिस्ट्री उपलब्ध कराने की दृष्टि से बहुत उपयोगी नहीं जान पड़ता।

(ख) इसी प्रकार से मरीज़ों को स्वास्थ्य पुस्तिकाएं जारी करने की प्रगति व स्थिति भी अपर्याप्त है। हालांकि कुछ पुस्तिकाएं जारी की गई हैं...(मगर) यह बात निगरानी समिति के ध्यान में आई है कि इन पुस्तिकाओं में उपचार की जानकारी/इतिहास की ज़रूरी जानकारी नहीं है। यह बताया गया कि स्वास्थ्य पुस्तिका को पूरा भरने में सम्बंधित डॉक्टर का काफी समय खर्च होगा, जिसका असर उनके इलाज के कार्यक्रम पर पड़ेगा और हो सकता है कि वे अस्पताल में आने वाले मरीज़ों की बड़ी संख्या का इलाज न कर पाएं।...अलबत्ता, माननीय सुप्रीम कोर्ट/हाई कोर्ट के आदेशों का पालन किया जाना चाहिए। इसलिए स्वास्थ्य पुस्तिकाएं जारी करने और उनमें उपचार की जानकारी रिकॉर्ड करने हेतु एक उपयुक्त पद्धति का विकास करना ज़रूरी व उचित लगता है।

(ग) विभिन्न गैस राहत अस्पतालों द्वारा जारी की गई स्वास्थ्य पुस्तिकाओं में मात्र मरीज़ का नाम, पिता का नाम और पता लिखा है। मगर इनमें केस हिस्ट्री, मरीज़ को दिए गए इलाज वगैरह की महत्वपूर्ण जानकारी नहीं है। अर्थात

स्वास्थ्य पुस्तिका/स्मार्ट कार्ड जारी करने का उद्देश्य ही पूरा नहीं हुआ है।

(घ) यह निराशाजनक है कि निगरानी समिति द्वारा की गई फालो-अप कार्रवाई और सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए निर्देशों के बावजूद अनुपालन अपूर्ण ही है।"

जहां तक गैस पीड़ितों के मेडिकल रिकॉर्ड्स के कंप्यूटरीकरण और नेटवर्किंग और प्रत्येक गैस पीड़ित को उसके पूरे मेडिकल रिकॉर्ड की हार्ड कॉपी उपलब्ध कराने की स्थिति का सवाल है, तो निगरानी समिति की टिप्पणियां पूरे मामले का सार प्रस्तुत कर देती हैं। इस स्थिति में कल्पना की जा सकती है कि जांचें, निदान और उपचार कितने सही ढंग से चल रहे होंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***